उपसंहार

आदिवासी प्रकृति जीवी होते हैं। ये हज़ारों साल से यहाँ रहते आए हैं। लेकिन देश आज़ादी के बाद उनको लगातार ठगा गया है। उनके अस्तित्व को ख़त्म करने की साजिश सरकार, ब्राह्मणवादी समाज और पूंजीवादी मिलकर कर रहे हैं। यह अस्तित्व अथवा पहचान ही अस्मिता है। आदिवासी हमेशा से अपनी अस्मिता के प्रति सजग रहे हैं। जब-जब इस पर चोट पहुँचाने की कोशिश की गई, इस समुदाय से संगठित होकर उसका प्रतिरोध किया। आदिवासी समाज लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज है। आज के इस संकटपूर्ण समय में आदिवासी अस्मिता को बचाने की बहुत जरूरत है। आज जल, जंगल, जमीन का अस्तित्व ही संक्रमणकाल से गुजर रहा है। आदिवासियों की अस्मिता के साथ ये सारे प्रश्न भावनात्मक रूप से जुड़े हुए हैं। आदिवासियों के अपने रीति-रिवाज, जीवन शैली, परम्पराएँ, उत्सव-त्यौहार, खान-पान, रहन-सहन और मूल्य होते हैं, जिन्हें वे हर हाल में बचाकर रखना चाहते हैं और इन्हीं सब पर संकट गहरे हो रहे हैं, जिनसे आदिवासी लड़ रहे हैं। यहाँ तक कि इनके संवैधानिक अधिकारों पर भी कुठाराघात किया जा रहा है।

आदिवासी मुद्दों को लेकर कई पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रही हैं। इनमें 'झारखंड', 'आदिवासी' 'अखड़ा', 'अबुआ झारखंड', 'छोटनागपुर दूत', 'आदिवासी सकम, 'सरना फूल', 'अरावली उद्घोष', 'आदिवासी साहित्य', 'गोंडवाना दर्शन', 'गोंडवाना सत्ता', 'दलित आदिवासी दुनिया' के नाम प्रमुख हैं। इसमें 'युद्धरत आम आदमी' जैसी गैर आदिवासी पत्रिका भी है, जो आदिवासी मुद्दों को प्रमुखता से उठाती रही है। इस क्रम में एक बहुत महत्वपूर्ण पत्रिका है, जो आदिवासी समाज में काफी लोकप्रिय है- 'आदिवासी सत्ता'। इस पत्रिका का कलेवर और इसमें छपने वाली स्तरीय सामग्री से कोई

भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह पत्रिका आदिवासी केंद्रित तो है ही, इसके साथ-साथ मूलनिवासी संकल्पना के साथ यह पूरे बहुजन समाज के उत्थान की बात करती है। इस पत्रिका का संपादकीय बौद्धिक-वैचारिक रूप से बहुत समृद्ध होता है। दुर्ग-भिलाई, छतीसगढ़ से निकलने वाली इस पत्रिका के संपादक श्री के.आर.शाह हैं। आदिवासियों की भाषा-बोली, साहित्य, इतिहास, प्रतिरोध एवं उनकी संस्कृति से जुड़े मुद्दों पर महत्वपूर्ण सामग्रियाँ इसमें निरंतर छपती रही हैं। पत्रिका सदैव आदिवासी अस्मिता को स्थापित करने के लिए संघर्षरत है। इसमें आदिवासी अस्मिता से जुड़े सभी पहलुओं पर संपादकीय, लेख, फीचर, चित्र आदि छपते रहते हैं।

भारत विभिन्नताओं का देश है। भारतीय सामाजिक संरचना अत्यंत जटिल है। विविध वर्गों और संरचनाओं को समझने बिना आदिवासियों को नहीं समझा जा सकता है। आदिवासी समुदाय के मूल्यांकन के बिना भारत देश का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता है। 'आदिवासी सत्ता' देश भर के प्रान्तों में अलग-अलग फैले हुए समुदायों को एक सूत्र में बांधने का कार्य अपनी पत्रिका के माध्यम से करने की कोशिश कर रही है। आज का दौर विमर्शों का दौर है और ऐसे समय में आदिवासी समुदाय की पीड़ा को, उनकी अस्मिता को व्यापक धरातल पर 'आदिवासी सत्ता' के माध्यम से सामने लाया जा रहा है। पत्रिका सदियों से पीड़ित, उपेक्षित, वंचित वर्ग को एक प्रखर चेतना व उर्जा प्रदान करने के लिए प्रयासरत दिखती है और उनके संघर्ष को तेज धार प्रदान करती हुई भी।

आज आदिवासी अस्तित्व पर गहरा संकट मंडरा रहा है। विकास के नाम पर केवल वे विस्थापन का दंश झेलते हुए भारी मात्रा में बिखर रहे हैं। नक्सल के नाम पर उनकी हत्या हो रही है। स्त्री अस्तित्व हाशिए पर है। यहाँ तक कि आदिवासी बाल जीवन भी सुरक्षित नहीं। राजनीतिक समानता की बात हो या सामाजिक अस्तित्व की, सभी क्षेत्रों

में उनके साथ दोयम दर्जे का सुलूक किया जा रहा है और इसके बरक्स उनके लिए कोई उपयुक्त योजना नहीं। 'आदिवासी सत्ता' अस्तित्व के इन्हीं विभिन्न पक्षों को लेकर गंभीर प्रश्न उठाती है।

भाषा-साहित्य और संस्कृति का सवाल आदिवासियों के लिए बहुत अहम है। पत्रिका में इससे जुड़े मुद्दों को लेखों के माध्यम से उठाया गया है। संपादकीय में अक्सर इस पर चिंता जताई जाती है। आज बड़ी तेजी से आदिवासी बोली-भाषा, संस्कृति विलुप्त होती जा रही है। हिन्दू संस्कृति ने कैसे आदिम संस्कृति में घुसपैठ किया है, इसका यथार्थ रूप पत्रिका में छपे लेखों में मिलता है। पत्रिका में आदिवासी संस्कृति की विविध झांकी अक्सर देखने को मिल जाती है। पत्रिका हिंदू कर्मकांडों के खिलाफ भी लेख आदि छापती है ताकि कचरा साहित्य आगे न फैल सके।

आदिवासी समाज का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। वर्तमान को प्रेरित करने के लिए और भविष्य का मार्ग बनाने के लिए ऐतिहासिक संदर्भों तक जाना जरूरी होता है। आदिवासी इतिहास को हमेशा गलत तरीके से पेश किया गया है। 'आदिवासी सत्ता' इसको पूरी गंभीरता के साथ उठाती है। इसके तमाम अंकों में प्रकाशित लेखों से आदिवासियों के सही इतिहास को जानने-समझने का अवसर मिलता है कि किस तरह सवर्ण इतिहास लेखन में आदिवासियों के योगदान को छुपाया गया या तो बदला गया या विकृत किया गया। पत्रिका में इस मुद्दे को लेकर कई बार अनेक महत्वपूर्ण लेखों को प्रकाशित किया गया है।

आदिवासी वैसे तो शांतिप्रिय होते हैं, लेकिन अगर कोई इनके अस्तित्व को चुनौती देता है तो ये प्रतिरोध करने से कभी पीछे नहीं हटते। अन्याय के खिलाफ लड़ना आदिवासियों की विशेषता है। 'आदिवासी सत्ता' के अंकों में आदिवासी अस्मिता के इस

पक्ष को भी उठाया जाता रहा है। विद्रोह के ऐतिहासिक पहलुओं को तो उठाया ही जाता है, वर्तमान में जहाँ-जहाँ आंदोलन हो रहे हैं, उनकी रिपोर्ट भी इस पत्रिका में छपती है। पत्रिका आदिवासी के अतिरिक्त अन्य वंचित अस्मिताओं की भी बात करती है। उन पर लगातार सामग्रियाँ प्रकाशित करती है। 'आदिवासी सत्ता' ने वैचारिक अभियक्ति के लिए बहुजन विमर्श को आधार माना है। यही कारण है कि पत्रिका पूरे बहुजन समाज के बीच समन्वय का सूत्र स्थापित करना चाहती है। वास्तव में 'आदिवासी सत्ता' का हर अंक आदिवासी अस्मिता का प्रतीक है।

आज भी आदिवासी विमर्श में पत्रकारिता का क्षेत्र कोसों दूर छूटा हुआ है। स्वंय के परिश्रम एवं इन्टरनेट के माध्यम से कुछ आदिवासी पत्र-पत्रिकाओं का पता चल भी जाता है जबकि इन्टरनेट में हिंदी की अन्य पत्रिकओं की भरमार है। इससे साफ पता चलता हैकि आज आदिवासी पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने की ज्यादा जरूरत है। आधुनिकता के दौर में भी आदिवासी क्षेत्र में कार्य कर रहे शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों के सामने कड़ी चुनौती है। आदिवासी अस्मिता के रूप में इस अभियान को तेज़ करने की जरूरत है। निःसंदेह हाशिए के समाज की मीडिया में 'आदिवासी सत्ता' जैसी पत्रिकाओं की बड़ी सफल भूमिका दिख रही है। आदिवासी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्हें अपनी संस्कृति, भाषा और कला-साहित्य को संरक्षित करने का प्रमुख आधार मिल पाया है। इस प्रकार 'आदिवासी सत्ता' पत्रिका आदिवासी अस्मिता के स्वरूप को और व्यापक और मज़बूत बना रही है। आज के समय में बहुजन मीडिया की स्थापना में इस पत्रिका का बड़ा योगदान है।